समयसार, १५१ गाथा। (गाथा) १५० पूरी हो गयी। **अब यह सिद्ध करते हैं कि ज्ञान मोक्ष का कारण है:–** १५१। ज्ञान अर्थात् आत्मा का स्वभाव, शुद्धस्वभाव है, वही मोक्ष का कारण है। पुण्य और पाप के (भाव), व्रतादि बन्ध के कारण हैं। वे कहीं मोक्ष के कारण नहीं हैं।

परमट्ठो खलु समओ सुद्धो जो केवली मुणी णाणी।
तम्हि ट्ठिदा सहावे मुणिणो पावंति णिव्वाणं।।१५१।।

परमार्थ है निश्चय, समय, शुध, केवली, मुनि, ज्ञानि है।
तिष्ठे जु उसहि स्वभाव मुनिवर, मोक्ष की प्राप्ती करै।।१५१।।

ज्ञान मोक्ष का कारण है... ज्ञान अर्थात् आत्मा। आत्मा का त्रिकाली शुद्धस्वभाव, शुभ-अशुभभावरहित ऐसा जो आत्मा का ज्ञानस्वभाव, वह मोक्ष का कारण है। **क्योंकि वह (ज्ञान)..** अर्थात् आत्मा का का शुद्धस्वभाव **शुभाशुभ कर्मों के बन्ध का कारण नहीं होने से..**

---

*भवन = होना;

आज यह बड़ा लेख आया है, ऐसा कि व्रत और यह सब संवर-निर्जरा का कारण है क्योंकि द्रव्यसंग्रह में ३५वीं गाथा में आता है न! वह बात यहाँ (संवत्) १९९४ पहले हीराभाई के मकान में पहले हो गयी थी। द्रव्यसंग्रह। व्रत, समिति, संवर-निर्जरा का कारण है। टीका में स्पष्ट (लिखा) है। व्रत अर्थात् शुभाशुभभावरहित-ऐसी स्पष्ट टीका है। निश्चय की बात है। अब वह यह मोक्ष का कारण है। यह और एक पुरुषार्थसिद्धियुपाय (में) 'असमग्र' आता है न! रागादि हैं, वह भी मोक्ष का उपाय है, बन्ध का (भी कारण है) दोनों लेते हैं। ऐसा। उसमें यह सिद्ध करते हैं। और एक श्रावक के अधिकार (में) शुभभाव परम्परा मोक्ष का कारण है, (ऐसा) आता है न! वह यह सब डालते हैं। द्रव्यसंग्रह की ३५वीं गाथा में तो स्पष्ट (शब्द हैं)। यह बात तो हीराभाई के मकान में (संवत्) १९९४ से पहले बहुत हो गयी है (कि) भाई! यह तो निश्चय की बात है। पाठ-टीका है। व्रत अर्थात् शुभाशुभभावरहित ऐसा जो व्रत, वह मोक्ष का कारण है, वह संवर-निर्जरा का कारण है। ३५वीं गाथा है। उसमें यह डाला है कि, देखो! यह संवर-निर्जरा का कारण है परन्तु संवर-निर्जरा का कारण तो शुद्ध है। व्रत शब्द पड़ा है अर्थात्? आहाहा! वह उज्जैन का दयाचन्द जैन है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि आत्मस्वभाव **शुभाशुभ कर्मों के बन्ध का कारण नहीं होने से..** आत्मस्वभाव, शुद्धस्वभाव शुभाशुभभावरहित, उसके स्वभाव की परिणति बन्ध का कारण नहीं होने से। **उसके इस प्रकार मोक्ष का कारणपना बनता है।** आहाहा! इसमें बड़ा झगड़ा! काया से और मन से ऐसा कि निवृत्ति ले तो संवर-निर्जरा होती है, ऐसा (अज्ञानी कहता है)।

यहाँ कहते हैं कि मोक्ष का कारण तो एक आत्मा का स्वभाव शुद्धस्वभाव, पवित्र स्वभाव है। उसे यहाँ ज्ञानरूप से कहा है। वह ज्ञान मोक्ष का कारण है क्योंकि ज्ञान अर्थात् आत्मस्वभाव। परिणति, हों! **शुभाशुभ कर्मों के बन्ध का कारण नहीं होने से उसके इस प्रकार मोक्ष का कारणपना बनता है।** आहाहा! अस्ति-नास्ति की है। ज्ञानस्वभाव, वह मोक्ष का कारण है और शुभाशुभभाव बन्ध का कारण, वह ज्ञान नहीं। ज्ञान शुभाशुभ बन्ध का कारण नहीं और ज्ञान मोक्ष का कारण है। ऐसे दो अस्ति-नास्ति सिद्ध की है। आहाहा!

वह ज्ञान, समस्त कर्म आदि अन्य जातियों से भिन्न.. (अर्थात्) शुभाशुभ

परिणाम आदि, कर्म आदि से भिन्न। **चैतन्य-जातिमात्र..** वह तो चैतन्य-जातिमात्र। आहाहा! और ये शुभाशुभभाव (होते हैं), वह चैतन्य जाति नहीं है। आहाहा! चैतन्य जाति (अर्थात्) ज्ञान, श्रद्धा, आनन्द, शान्ति, स्वच्छता इत्यादि हैं, वह **चैतन्य-जातिमात्र परमार्थ (-परम पदार्थ) है..** आहाहा! **वह ज्ञान,..** अर्थात् यहाँ ज्ञान का परिणमन लेना है, स्वभाव! त्रिकाली ज्ञान का आश्रय है, वहाँ परिणति हो, वह मोक्ष का कारण है, ऐसा। त्रिकाली द्रव्य मोक्ष का कारण है, यह सिद्ध नहीं करना। त्रिकाली वस्तु शुद्ध है, उसके आश्रय से जो ज्ञान, दर्शन, आनन्द प्रगट हो, वह मोक्ष का कारण है, क्योंकि वह शुभाशुभ बन्ध का कारण नहीं है; इसलिए उसे परमपदार्थ कहा गया है। आहाहा!

अन्य जातियों से भिन्न चैतन्य-जातिमात्र... आहाहा! जानन-देखन, आनन्दादि चैतन्य-जातिमात्र। इसमें पुण्य-पाप के भाव (हों), वह चैतन्य जाति नहीं; कुजाति है। आहाहा! ऐसा लोगों को कठिन पड़ता है। महाव्रत और व्रत लेकर बैठे, अब उसे संवर-निर्जरा सिद्ध करना है। यह **आत्मा है। चैतन्य-जातिमात्र परमार्थ (-परम पदार्थ) है-आत्मा है।** अर्थात् इस ज्ञानस्वभाव का जो परिणमन (हुआ), वह मोक्ष का कारण है, वह आत्मा है। समझ में आया?

दूसरा बोल। **वह (आत्मा) एक ही साथ (युगपद्) एक ही साथ एकत्वपूर्वक प्रवर्तमान ज्ञान..** प्रवर्तमान, हों! **ऐसा जो ज्ञान और गमन (परिणमन) स्वरूप होने से समय है,..** अन्तर आनन्द और ज्ञान का परिणमन। है न? आहाहा! ऐसा जो **ज्ञान और गमन..** जानना और परिणमना, ऐसा। जानना और जानने का परिणमन, आनन्द और आनन्द का परिणमन, शान्ति और शान्ति का परिणमन। आहाहा! वह मोक्ष का कारण है। उसे समय कहा जाता है, ऐसा कहते हैं परन्तु समय अर्थात् द्रव्य नहीं, पर्याय की बात है।

शुद्ध चैतन्य वस्तु है, उसके अवलम्बन से-आश्रय से उसकी जाति की परिणमन दशा हो, चैतन्य की जाति का परिणमन हो, वह मोक्ष का कारण है और वह शुभाशुभ बन्ध का कारण नहीं है; इसलिए वह मोक्ष का उपाय है। उसे परमपदार्थ कहा जाता है। वह आत्मा का परिणमन है, वह परमपदार्थ है। वह आत्मा स्वयं परमपदार्थ है तो उसका परिणमन, मोक्ष का कारण, वह परमपदार्थ है। शुभाशुभभाव, वह परमपदार्थ नहीं है। आहाहा! आहा! वह ज्ञान और गमन (अर्थात्) जानना और परिणमन करना, उस **स्वरूप**

होने से समय है, यह मोक्ष के मार्ग की दशा की बात है। आहाहा! समय है, यह समय- त्रिकाली तो समय है, परन्तु त्रिकाली समय का आश्रय लेकर जो परिणति हुई, उसे भी यहाँ समय कहा जाता है। समझ में आया?

रात्रि को भिण्डरवाले भाई (आये) थे, वे गये? नहीं लगते, गये होंगे। भिण्डरवाले नहीं? रात्रि को (आये थे)।

मुमुक्षु : उनका नाम उदयप्रकाश...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह चाहे जो हो। चलता हो और कहे कुछ। उसकी शैली ऐसी है। सब विरुद्ध शैली। यहाँ है या नहीं? तब कहे, नहीं।

(यहाँ अपने) दूसरा बोल (चलता है)। **'परमट्ठो'** कहा है न? इसलिए पहले परमार्थ की व्याख्या की है। १५१ (गाथा) है न? **'परमट्ठो'** की व्याख्या की है। पहला पद **'परमट्ठो'** है न! उसकी व्याख्या की। फिर दूसरा (बोल) **'समओ'** कहा। पश्चात् तीसरा (बोल) **'सुद्धो'**।

समस्त नयपक्षों से अमिश्रित.. यहाँ शुद्ध की यह व्याख्या है। **'अहमेक्को खलु सुद्धो'** (३८वीं गाथा में कहा) वहाँ दूसरी व्याख्या (की है)। जिस जगह जो व्याख्या (हो तद्नुसार अर्थ समझना) और शुद्ध शब्द आवे, उसके अर्थ बहुत होते हैं। एकरूप को शुद्ध कहते हैं, शुद्ध को एकरूप कहा जाता है। यहाँ **समस्त नयपक्षों से...** आहाहा! विकल्प से रहित, ऐसा कहना है। नयपक्षों (कहा है न)? (इसीलिए इसका अर्थ) विकल्प। मैं अबद्ध हूँ, मुक्त हूँ-ऐसे नय के पक्ष से **अमिश्रित..** ऐसे विकल्प से नहीं मिश्रित। **एक ज्ञानस्वरूप होने से..** एक ज्ञानस्वरूप होने से **शुद्ध है,..** आहाहा! जिसमें शुभाशुभभाव का मिश्रण नहीं है। अकेले आत्मा की चैतन्य जाति की शुद्धता का परिणमन है। आहाहा! उसे यहाँ शुद्ध कहा गया है।

गाथा ७३ शुद्ध कहा था, वह फिर एक समय की षट्कारक की परिणति (से पार उतरी हुई जो अनुभूति, उस अनुभूतिमात्रपने के कारण शुद्ध है)। वहाँ दूसरा कहा था। यह तो पहले लिया है क्न? **'अहमेक्को खलु सुद्धो'** अखण्डित हूँ, एक हूँ, पूर्ण हूँ। शुद्ध की व्याख्या वहाँ यह की है।

यहाँ नयपक्ष से रहित (कहा है)। शुभ से तो रहित ही है। साधारण जो दया, दान, व्रत, भक्ति के शुभ (भाव) हैं, उनसे तो रहित है, परन्तु नयपक्ष के भाव से भी रहित है। यह विकल्प है, राग है। आहाहा! इससे रहित **एक ज्ञानस्वरूप होने से शुद्ध है,..** आहाहा!

केवल चिन्मात्र वस्तुस्वरूप होने से केवली है;.. यह पर्याय स्वयं केवली है। निर्मल है न, (इसलिए ऐसा कहा) और चारित्र पाहुड़ में आया न! 'अमेया'! अक्षय और अमेया। पर्याय, हों! स्वयं भगवान आत्मा अक्षय और अमेय है अर्थात् मर्यादारहित स्वभाव जिसका अमर्यादित है। आहाहा! मर्यादा नहीं है। इतना-इतना अपा.. र.. अपा.. र.. गहन गम्भीर ऐसा भगवान आत्मा का एक-एक गुण का ऐसा गहरा-गहरा स्वभाव है, ऐसे अनन्त गुणों का गहरा स्वभाव। आहाहा! उसका परिणमन.. आहाहा! उसे (यहाँ) केवली (कहा है)। केवली अर्थात् केवल, ऐसा। केवल! रागरहित अकेला केवली भाव, वह केवल। केवली अर्थात् वे केवली भगवान यहाँ नहीं लेना। यहाँ तो मोक्षमार्ग लेना है। आहाहा! अकेला! शुभाशुभभाव से रहित अकेला शुद्धपरिणमन का भाव-केवल। इससे उसे केवली, ऐसा कहा गया। आहाहा!

पुरुषार्थसिद्ध्युपाय में असमग्र (आता) है न! वहाँ उसका अर्थ (लोग) विपरीत करते हैं न! देखो! बन्ध भी मोक्ष का कारण है! उसका अर्थ भाई ने दूसरा किया है। कैलाशचन्दजी ने। टोडरमलजी ने तो बराबर अर्थ किया है। उनका बराबर किया हुआ है। आहाहा! परन्तु क्या हो? प्रभु! अपनी मान्यता को पुष्टि करना है, ऐसे शास्त्र के अर्थ करना है, परन्तु शास्त्र को जो पुष्टि करनी है, उस प्रकार से उसका अर्थ करना (चाहिए)। आहाहा!

यहाँ तो केवली (कहा है अर्थात्) अकेला केवल। जिसे पुण्य का सम्बन्ध नहीं, ऐसा। शुभराग का जिसे जरा सम्बन्ध नहीं, संग नहीं। आहाहा! ऐसा जो शुद्धमार्ग, उसे यहाँ केवलीरूप से (कहा है) केवल, अकेला, शुद्ध है, इससे केवली, ऐसा। है तो मोक्षमार्ग। आहाहा! (यह) केवली।

(अब कहते हैं) **केवल मननमात्र...** आहाहा! **भावस्वरूप होने से मुनि है,..** यह तो ज्ञान का एकाग्रपना, ज्ञान का मनन अर्थात् चिन्तवन। विकल्प नहीं। आत्मस्वभाव का मनन अर्थात् एकाग्रता। इससे वह मुनि कहा जाता है। उसे मुनि (कहते हैं)। आहाहा!

आत्मा के स्वभाव का मनन अर्थात् एकाग्रता होना, उसे यहाँ मोक्षमार्ग को मुनि कहने में आता है। मोक्षमार्ग को मुनिरूप से भी कहने में आता है। आहाहा!

पूर्व के पक्ष के आग्रह रखकर शास्त्र का अर्थ करे, वह कुछ मेल नहीं खाता। स्वयं पुष्टि करने जाए परन्तु ऐसे कहीं खोटी पुष्टि होगी? आहाहा! यह तो भगवान, सन्त केवली (कहते हैं)। आहाहा! उन मुनि को यहाँ केवली कहा। केवली को मुनि कहा। वह केवली अर्थात् यह। राग के सम्बन्धरहित अकेला शुद्धभाव (हुआ), वह केवल, वह केवली, वह मुनि। आहाहा! ऐसा मुनिपना! उसमें कहीं व्रत, तप, क्रिया और ऐसा कुछ आया नहीं। आहाहा!

मनन, मनन अर्थात् आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप प्रभु त्रिकाली का मनन अर्थात् एकाग्रता। मनन अर्थात् विकल्प नहीं। आहाहा! भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्द का-अतीन्द्रिय अनन्त गुणों का सागर, उसका मनन, उसमें एकाग्रता (होना), उसे—मनन को करनेवाला है, इसलिए उसे मुनि कहते हैं। मोक्षमार्ग को मुनि कहते हैं। आहाहा! ऐसी बात है।

मुमुक्षु : यह एक ज्ञायकस्वभाव की शुद्धपरिणति लेना?

पूज्य गुरुदेवश्री : परिणति लेना है, मोक्षमार्ग लेना है। यहाँ मनन कहा न?

केवल मननमात्र (ज्ञानमात्र).. मनन अर्थात् ज्ञानस्वभावरूप। शुद्धस्वभाव के परिणमनरूप। अकेला **भावस्वरूप होने से मुनि है,..** अकेला ज्ञान के भावस्वरूप होने से। ज्ञान अर्थात् त्रिकाली स्वभाव। उसके मनन (अर्थात्) एकाग्र मात्र होने से वह मुनि है। मोक्षमार्ग है, उसे मुनि कहा जाता है। आहाहा! ऐसी बात है। सम्प्रदाय में पकड़ गये हों, उन्हें तो यह ऐसा लगता है कि यह क्या? यह क्या बात करते हैं? जो किया जा सके, ख्याल में आवे बातें कहते हैं (कि) बन्ध का कारण है। अब, कोई अगम्य बातें! आहाहा! भाई! मार्ग कोई ऐसा है। आहाहा!

केवल मननमात्र.. ऐसा कहा न? केवल! केवल भगवान शुद्ध चैतन्य का मनन। आहाहा! राग का, पुण्य का, दया, दान का मनन नहीं। आहाहा! मार्ग बहुत (कठिन है), बापू! इसे हाँ करना वह भी.. आहाहा! पुरुषार्थ है कि मार्ग तो यह है। आहाहा! पहुँच

सके नहीं, इसलिए फेरफार करना, दूसरे प्रकार से मानना और मनवाना, वह कुछ वस्तु है ? आहाहा !

केवल मननमात्र... ऐसा क्यों कहा ? कुछ भी, इसे शुभराग का सम्बन्ध कुछ नहीं है। अकेला आनन्द और ज्ञान का मनन-एकाग्रता। भगवान आत्मा तो शुद्ध है, उसके अनन्त गुण शुद्ध हैं। एक वस्तुरूप से आत्मा (एक) और गुणरूप से अनन्त, वे शुद्ध हैं, सब गुण शुद्ध हैं। उन (अनन्त) गुण का धारक प्रभु, उसका केवल एक का ही मनन। आहाहा ! उसके ओर की एक की ही एकाग्रता। वह मुनि है। यहाँ मोक्षमार्ग में मुनि को ऐसा कहा। ऐसा नहीं कहा कि पंच महाव्रत पालन करते हैं, नग्न हैं; इसलिए (मुनि हैं)। आहाहा ! ऐसी व्याख्या है।

अकेला—केवल भगवान अकेला, निराला, त्रिकाल निरावरण अखण्ड एक शुद्ध पारिणामिक लक्षण निज परमात्मद्रव्य का मनन, आहाहा ! उसका मनन ! मनन अर्थात् ऐसे विकल्प से मनन (करे), ऐसा नहीं। उस ज्ञान का एकाग्र होना (वह मनन है)। मुनि है न ! अर्थात् मनन। मनन अर्थात् मुनि, ऐसा। मनन अर्थात् मुनि, इतना लिया। इस मनन का अर्थ शुद्ध चैतन्य में एकाग्रता। आहाहा ! उसे यहाँ मुनि कहते हैं, उसे शुद्ध कहते हैं, उसे परमार्थ कहते हैं, उसे समय कहते हैं। आहाहा !

अब (कहते हैं), **स्वयं ही ज्ञानस्वरूप होने से ज्ञानी है,.. स्वयं ही ज्ञानस्वरूप होने से..** अर्थात् इसके ज्ञान को प्रगट करने के लिए स्वयं ज्ञानस्वरूप ही त्रिकाल है और उसमें से ज्ञान की परिणति आती है। उसे किसी के सहारे की या मदद की अपेक्षा की आवश्यकता नहीं है। वह **ज्ञानस्वरूप होने से..** परिणति एकदम ज्ञानस्वरूप होने से। अर्थात् कि उसकी पर्याय, परिणति अर्थात् आत्मस्वभाव शुद्ध होने से उसे ज्ञानी कहा जाता है। आहाहा ! स्वयं ज्ञानस्वरूप होने से ज्ञानी है। आहाहा ! यहाँ शास्त्र का इतना पठन हुआ, इसलिए ज्ञानी है, ऐसा नहीं कहा। आहाहा ! कि इतना इसे आता है, इसलिए यह ज्ञानी है, ऐसा नहीं कहा। आहाहा ! यह तो **ज्ञानस्वरूप होने से ज्ञानी है,..** इसकी परिणति ही ज्ञानस्वरूप है। जैसे वस्तु ज्ञानस्वरूप है, आनन्दस्वरूप है, वैसे उसकी परिणति भी अनन्त गुण की व्यक्तता के अंश (स्वरूप है)। वह ज्ञानस्वरूप होने से, रागस्वरूप नहीं,

विकल्पस्वरूप नहीं होने से; ज्ञानस्वरूप होने से वह ज्ञानी है। आहाहा! फिर एक-एक गाथा का एक-एक शब्द, एकान्त लगे ऐसा है।

आहाहा! एक समय में केवलज्ञान को ले सके! अरे.. प्रभु! आहाहा! एक समय में अनन्त आनन्द का लाभ ले सके, ऐसी ताकतवाला प्रभु, तू उसे छोटा क्यों मानता है? उसका जो ज्ञान का, आनन्द का स्वरूप है.. आहाहा! उसकी परिणति से वह ज्ञानी कहा जाता है। आहाहा! वह ज्ञानी अर्थात् इतना जाना और इतना जानने में आया, इसलिए ज्ञानी है, ऐसा नहीं है। पर, शास्त्र आदि (जानने की) बात नहीं है। आहाहा! गाथा तो एक के बाद एक उत्कृष्ट आती है!! आहा! समयसार अर्थात् आहाहा! अजोड़ चक्षु है! इसके साथ दूसरे किसी का मेल खाये, ऐसा नहीं है। आहाहा! उसे ज्ञानी कहते हैं। मोक्षमार्ग की परिणति को ज्ञानस्वरूप, आत्मस्वरूप होने से उसे ज्ञानी कहते हैं, उसे मुनि कहते हैं, उसे परमार्थ कहते हैं, उसे समय कहते हैं, उसे शुद्ध कहते हैं। आहाहा!

'स्व' का भवनमात्रस्वरूप होने से स्वभाव है... 'सहावे' शब्द है न? यह बाद में है। इतने अर्थ हो गये—परमार्थ, समय, शुद्ध, केवली, मुनि और ज्ञानी। **'तम्हि ट्ठिदा'** पश्चात् **'सहावे'** आता है। यह **'सहावे'** की व्याख्या की है। तीसरे पद में **'तम्हि ट्ठिदा सहावे'** यह सहावे की व्याख्या करते हैं।

'स्व' का भवनमात्रस्वरूप होने से स्वभाव है.. स्वभाव क्यों कहा? स्वभाव क्यों कहा? आहाहा! स्व के भवनमात्र (अर्थात्) अकेला प्रभु, अनन्त गुण का सागर प्रभु, वह अनन्त गुण की परिणति अकेली शुद्ध! आहा! वह स्व का भवन है। अकेला निर्मलानन्द के नाथ का-स्व का भवन है। राग है, वह पर है, उसका उसमें भवन नहीं, होना नहीं। आहाहा! अरे..! प्रभु! यह तो हित की बात है न! इसे एकान्त करके ऐसे नहीं डाला जाता। आहाहा!

देह छूट जाती है, देखो न यह! कितना सुनते हैं। आहाहा! वह डॉक्टर गुजर गया, एक पच्चीस वर्ष की लड़की अभी गुजर गयी! आहाहा! चूड़गढ़ की लड़की थी न! भाई! राजकोट आयी थी। इकलौती लड़की। विवाह में चालीस-पचास हजार खर्च किये थे। सवा वर्ष पहले विवाह, उसमें दो महीने का बालक। अन्दर अंतड़ियाँ दो हो गयी थी। वह

स्वयं (कहे)। मुझे कुछ नहीं चाहिए। समाधिमरण काल! यहाँ दो-तीन बार आ गयी है। आहाहा! पच्चीस वर्ष की उम्र! कब देह छूटे, बापू! उसकी स्थिति (निश्चित है)। आहाहा! ऐसा नहीं जानना कि अभी हम निरोगी हैं, हमें कहीं रोग दिखता नहीं, इसलिए हमें (अभी मरण नहीं आयेगा)। आहाहा! किस पल में (परमाणु) बदलें... आहाहा! बदलने का एक समय है। सम्यग्दर्शन होने में, ज्ञानान्तर होने में भी एक समय है। आहाहा! देह छूटने में भी.. आहाहा! एक ही समय (लगता है)। जा..ये.. अन्यत्र। आहाहा! प्रभु! कहाँ जाएगा तू? आहाहा! तेरा स्वभावमात्र जो है, उस प्रकार से स्वभाव प्रगट किया होगा.. आहाहा! तो जहाँ जाएगा, वहाँ तू स्वभाव में ही है। आहाहा!

श्रीमद् को एक ने श्रीकृष्ण का पूछा था न! श्रीकृष्ण कहाँ हैं? वे आत्मा के स्वभाव में हैं, ऐसा कहा। वह मानो कि ऐसा अमुक-अमुक कहेंगे। वे वहाँ भी आत्मस्वभाव में हैं, भाई! आहाहा! समकिती हैं, ज्ञानी हैं। आहाहा! वे किसी भी गति में हैं, ऐसा नहीं। आहाहा! उस गति के स्थल में हैं, यह (भी) नहीं। वे तो आनन्द और ज्ञानस्वरूप प्रभु! उसका परिणमन है, उसमें वे हैं। विकल्प आवे, उसमें भी जहाँ वे नहीं (तो गति में तो कहाँ से होंगे?) आहाहा! बहुत दु:ख वहाँ हो? (तब) जरा अरुचि का द्वेष भी आवे, तथापि उसमें वे नहीं हैं। आहाहा! वे तो मनन-भाव जो स्वभाव है, चैतन्य का जो स्वभाव है... आहाहा! वह मात्र है। आहाहा!

सम्यग्दृष्टि चाहे जिस.. कल कहा नहीं था? ४४ वें पृष्ठ पर। मिथ्यात्व के नाश से साक्षात् तीन रत्नत्रय प्रगट होते हैं। यह तो कल आया था। आहाहा! इतना भी स्वरूप का स्थिरता का अंश चौथे गुणस्थान में भी आता है, भाई! पाँचवें में तो दर्शन, चारित्र में, भक्ति में स्थित हैं, ऐसा तो कहा है परन्तु यहाँ तो चौथे में कहा। आहाहा! वह अत्यन्त अस्थिरता बिल्कुल पूरी थी, उसमें से अनन्तानुबन्धी और मिथ्यात्व गया। आहाहा! वह घर में आया और घर में थोड़ा स्थिर हुआ। आहाहा! इससे वह तो स्वभावमात्र है। आहाहा!

अथवा.. स्वभाव की दो व्याख्या की है। **'सहावे'** यह शब्द है, इसके दो अर्थ किये हैं। एक यह— **'स्व' का भवनमात्रस्वरूप होने से स्वभाव है अथवा स्वत: चैतन्य का भवनमात्रस्वरूप होने से सद्भाव है..** दूसरा अर्थ सद्भाव किया। **स्वत: चैतन्य**

का भवनमात्र.. आहाहा! चैतन्य का होना। भगवान आनन्द और ज्ञान का स्वरूप, उसकी पर्याय में उस चैतन्य का होना। राग के होने का अभाव, चैतन्य के होने का सद्भाव। आहाहा! भगवान चैतन्यस्वरूप का होना, वह सद्भाव। सद्भाव-जैसा स्वभाव है, वैसा होना, इसका नाम सद्भाव है। आहाहा!

स्वतः (अपने से ही) चैतन्य का भवनमात्र.. भवन अर्थात् होना। 'होना वह' (मूल ग्रन्थ में) नीचे (फुटनोट है)। चैतन्य के होनेमात्र स्वरूप **होने से सद्भाव है (क्योंकि जो स्वतः होता है, वह सत्-स्वरूप ही होता है)।** देखा? सद्भाव है न? सद्भाव - सत्भाव। आहाहा! **(क्योंकि जो स्वतः होता है, वह सत्-स्वरूप ही होता है)।** स्वतः हो, वह सत् ही होता है, सत्स्वरूप ही होता है। आहाहा! मोक्ष का मार्ग सद्भाव है, सत्स्वभाव है। सत् है, वैसा ही उसका सद्भाव-परिणमन है। आहाहा! जैसा स्वतः त्रिकाली स्वरूप है, वैसा ही उसका मोक्ष का मार्ग भी सद्भाव स्वतः है। आहाहा! उसे कोई व्यवहार और निमित्त किसी की अपेक्षा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात है। एक गाथा में गजब किया है न? आहाहा!

'सहावे' के दो अर्थ किये। सहावे है न? **'तम्हि ट्ठिदा सहावे'** एक, दो, तीन, चार, पाँच और छह अर्थ किये, उसमें सातवाँ (अर्थ है)। सातवें के दो अर्थ किये। आहाहा! एक तो स्व के परिणमनरूप होनेरूप है, इसलिए स्वभाव। दूसरा **स्वतः (अपने से ही) चैतन्य का भवनमात्र होने से सद्भाव है..** आहाहा! आहाहा! अब ऐसा उपदेश..! बापू! मार्ग बहुत सूक्ष्म, भाई!

आहा! चौरासी के अवतार में भटक-भटककर मर गया। आहाहा! यहाँ अरबोंपति (होवे, वह) अण्डा, माँस खाता होवे तो मरकर नरक में जाए और नहीं तो तिर्यंच में (जाए), आहाहा! कौवे के कूख में, मैना के कूख में (जाए)। आहाहा!

भगवान आत्मा पूर्ण अनन्त पवित्र स्वभाव (स्वरूप है), उसका उस प्रकार से होना, इसलिए स्वभाव और सद्भाव.. आहाहा! (अर्थात् कि) वह सत्स्वरूप है.. आहाहा! **स्वतः (अपने से ही) चैतन्य का भवनमात्र होने से सद्भाव है (क्योंकि जो स्वतः होता है, वह सत्-स्वरूप ही होता है)।**

इस प्रकार शब्दभेद होने पर भी... सात शब्दभेद पड़े न? अर्थ आठ किये। **शब्दभेद होने पर भी वस्तुभेद नहीं है। (यद्यपि नाम भिन्न-भिन्न हैं, तथापि वस्तु एक ही है)।** मोक्ष के मार्ग की परिणति तो एक ही प्रकार की है। नामभेद से भले सात प्रकार कहे। आहाहा! भगवान के गहरे घर में गया, भोंयरे में गया, प्रभु! बाहर में जहाँ भटकता था। पर्याय और बाहर में (भटकता था).. आहाहा! पर्याय जो अवस्था है, वह बाहर में भटकती थी। पुण्य, शुभ-अशुभभाव में भटकती थी। बहुतों को तो अशुभ में वर्तती थी। आहाहा! उसे घर में झुका लिया। जो स्वयं तल में पड़ा है, पर्याय के तल में ध्रुव साथ में ही है। ऐसे साथ में है, ऐसे साथ में नहीं। बाहर में जोड़ने से राग है और अन्तर में जोड़ने से ध्रुव है। आहाहा! ऐसे मोक्षमार्ग के नाम भिन्न-भिन्न होने पर भी वस्तु एक ही है।

भावार्थ : मोक्ष का उपादान तो आत्मा ही है। मूल उपादान—शुद्ध उपादान तो वही है। आहाहा! **परमार्थ से आत्मा का ज्ञान-स्वभाव है;..** सभी गुणों की अपेक्षा, दूसरे गुणों की अस्ति है परन्तु यह ज्ञान तो स्वयं अपने को जानता है, स्वयं पर को जानता है। आहाहा! तथापि विकल्प बिना जाने, ऐसा उसका स्वभाव है, तो भी विकल्प उसका स्वभाव (अर्थात्) स्व-पर को जानना—ऐसा विकल्प, वह स्वभाव है। राग विकल्प, वह नहीं। आहाहा! ऐसी वस्तु है। **परमार्थ से आत्मा का ज्ञान-स्वभाव है; जो ज्ञान है, सो आत्मा है..** देखा? **और आत्मा है, सो ज्ञान है। इसलिए ज्ञान को ही मोक्ष का कारण कहना योग्य है।** आहाहा! यह आत्मा का स्वभाव है, उसका परिणमन (होता है), वही मोक्ष का कारण है। वह ज्ञान का ही परिणमन है; राग का नहीं। आहाहा!

गाथा–१५२

अथ ज्ञानं विधापयति –

परमट्ठम्हि दु अठिदो जो कुणदि तवं वदं च धारेदि।
तं सव्वं बाल–तवं बाल–वदं बेंति सव्वण्हू।।१५२।।

परमार्थे त्वस्थितः यः करोति तपो व्रतं च धारयति।
तत्सर्वं बाल–तपो बाल–व्रतं ब्रुवन्ति सर्वज्ञाः।।१५२।।

ज्ञानमेव मोक्षस्य कारणं विहितं परमार्थभूतज्ञानशून्यस्याज्ञानकृतयोर्व्रततपः कर्मणोः बन्धहेतुत्वाद्–बालव्यपदेशेन प्रतिषिद्धत्वे सति तस्यैव मोक्षहेतुत्वात्।।१५२।।

अब, यह बतलाते हैं कि आगम में भी ज्ञान को ही मोक्ष का कारण कहा है:–

परमार्थ में नहिं तिष्ठकर, जो तप करें व्रत को धरें।
तप सर्व उसका बाल अरु, व्रत बाल जिनवर ने कहे।।१५२।।

गाथार्थ : [परमार्थे तु] परमार्थ में [अस्थितः] अस्थित [यः] जो जीव [तपः करोति] तप करता है [च] और [व्रतं धारयति] व्रत धारण करता है, [तत्सर्वं] उसके उन सब तप और व्रत को [सर्वज्ञाः] सर्वज्ञदेव [बालतपः] बालतप और [बालव्रतं] बालव्रत [ब्रुवन्ति] कहते हैं।

टीका : आगम में भी ज्ञान को ही मोक्ष का कारण कहा है, (ऐसा सिद्ध होता है); क्योंकि जो जीव परमार्थभूत ज्ञान से रहित है उसके, अज्ञानपूर्वक किये गये व्रत, तप आदि कर्म बन्ध के कारण हैं, इसलिए उन कर्मों को 'बाल' संज्ञा देकर उनका निषेध किया जाने से ज्ञान ही मोक्ष का कारण सिद्ध होता है।

भावार्थ : ज्ञान के बिना किये गये तप, व्रतादि को सर्वज्ञदेव ने बालतप तथा बालव्रत (अज्ञानतप तथा अज्ञानव्रत) कहा है, इसलिए मोक्ष का कारण ज्ञान ही है।

गाथा - १५२ पर प्रवचन

अब, यह बतलाते हैं कि आगम में भी ज्ञान को ही मोक्ष का कारण कहा है:- आहा! १५२ (गाथा)

परमट्ठम्हि दु अठिदो जो कुणदि तवं वदं च धारेदि।
तं सव्वं बाल-तवं बाल-वदं बेंति सव्वण्हू।।१५२।।

परमार्थ में नहिं तिष्ठकर, जो तप करें व्रत को धरें।
तप सर्व उसका बाल अरु, व्रत बाल जिनवर ने कहे।।१५२।।

आहाहा! **आगम में भी..** (अर्थात्) वीतराग के उपदेश में, दिव्यध्वनि में। 'ॐकारध्वनि सुनि अर्थ गणधर विचारै, रचि आगम उपदेश' उस भगवान की वाणी में से आगम की रचना हुई है। गणधरों ने उस आगम में से रचना की है। आहाहा! **आगम में..** इसका अर्थ कि जिसके आगम में राग की वृत्ति मोक्षमार्ग माने, वह आगम नहीं है। आहाहा! वह भगवान का आगम नहीं है। आहाहा! भगवान के आगम में त्रिलोकनाथ की वाणी में जो आया, वह आगम में रचा गया। उस आगम में.. आहाहा! **आगम में भी ज्ञान को ही मोक्ष का कारण कहा है..** ऊपर से तो कहते हैं परन्तु सिद्धान्त, वीतराग की वाणी ऐसा कहती है। आहाहा!

आगम में भी.. आहाहा! अर्थात् कि कोई ऐसा कहे कि व्रत-तप और यह सब है, वह भी मोक्ष का कारण है—तो कहते हैं, नहीं, नहीं। आगम में ऐसा नहीं कहा। वीतराग तीन लोक के नाथ अनन्त तीर्थंकरों की रचित वाणी, उनके रचित आगम, उसमें भी ज्ञान अर्थात् आत्मा को ही मोक्ष का कारण फरमाया है। आहाहा!

इसमें बड़ा लेख आया है। आहाहा! यह व्यवहार व्रत और वह सब संवर-निर्जरा का कारण है। कहो! आहाहा! उज्जैन का कोई दयाचन्द सेठ है, कोई शास्त्री है। आहाहा! एक तो वह उज्जैन का है न! नहीं? उज्जैन का वह मुख्य नहीं? पण्डित! सत्येन्द्र! यह कोई दूसरा है। दयाचन्द। उसे बेचारे को जँचा हो, वैसा कहे। वह कहीं व्यक्ति के प्रति (द्वेष नहीं है)। आहाहा!

यहाँ तो सत्य वस्तु हाथ आवे, उसे मोक्ष का मार्ग होता है। बाकी राग और द्वेष के परिणाम अन्दर अनन्त काल से हुए। आहाहा! इस सत् को मानने की संख्या की कोई आवश्यकता नहीं है। बहुत माने, इसलिए वह सत्य है; थोड़े माने, इसलिए (मिथ्या है), ऐसा कुछ नहीं है। सत् तो सत् है। आहाहा!

आगम में भी.. आहाहा! आया न? **'बेंति सव्वण्हू'** पाठ में है न! (अर्थात्) सर्वज्ञ ऐसा कहते हैं। उसका अर्थ किया है। आहाहा! सर्वज्ञ भगवान त्रिलोकनाथ ऐसा कहते हैं। आहाहा! वीतराग सर्वज्ञ प्रभु की वाणी में-आगम में भी **ज्ञान को ही मोक्ष का कारण कहा है..** आत्मा का जो शुद्धस्वरूप है, वही मोक्ष का कारण है। आहाहा! यह लाख-करोड़ व्रत और तप और भक्ति के परिणाम (करे परन्तु) आगम में उन्हें मोक्ष का कारण नहीं कहा है। तू उसका उल्टा अर्थ करके आगम में से निकाले (परन्तु) वे आगम के अर्थ नहीं हैं। आहाहा! आगम के अर्थ में तो यह भरा है।

अन्दर ज्ञान—आत्मा चैतन्यस्वरूप प्रभु.. आहाहा! विकल्प से उस पार ऐसा परमात्मा स्वयं शुद्धचैतन्य (विराजमान है), उसे यहाँ 'ज्ञान' शब्द से कहा है। उसका परिणमन और उसका परिणमन वह ज्ञान, ऐसा। उस **ज्ञान को ही..** 'ही' शब्द प्रयोग किया है। एकान्त कर डाला। कथंचित् मोक्ष का मार्ग ज्ञान और कथंचित् राग (कहो) तो अनेकान्त हो, नहीं तो एकान्त हो जाता है, (ऐसा अज्ञानी कहते हैं)। आहाहा!

ज्ञान को ही.. ऐसा। तीन लोक के नाथ की वाणी में आत्मा के आनन्दस्वभाव और ज्ञानस्वभाव की एकाग्रता को मोक्ष का मार्ग कहा है। आहाहा! अरे! परमेश्वर और जैन को माननेवालों (को)... आहाहा! ऐसा कहते हैं कि यदि तुम जैन को माननेवाले हो तो जैन भगवान के उपदेश में तो-आगम में तो यह आया है। आहाहा!

ज्ञान को ही.. (कोई) कहता है कि जैनदर्शन में 'ही' होता ही नहीं। ऐसा एक पत्र में आता है, नहीं? श्रीमद् में आता है। वह तो नित्य ही है या अनित्य ही है, ऐसा नहीं है। ऐसा (कहना है)। कथंचित् नित्य है, कथंचित् अनित्य है, ऐसा (कहना है)। नित्य है, वह नित्य ही है; अनित्य है, वह अनित्य ही है। उसमें 'ही' नहीं, ऐसा नहीं है। पूरा द्रव्य कहना हो तो कथंचित् नित्य और कथंचित् अनित्य (कहा जाता है), परन्तु नित्य से कहना हो तो नित्य, वह नित्य ही है और कथंचित् नित्य वह नित्य है और कथंचित् अनित्य वह

नित्य है, (ऐसा नहीं है)। आहाहा! ऐसे अनित्य है, वह अनित्य ही है। कथंचित् अनित्य भी नित्य है और अनित्य है, ऐसा अनेकान्त नहीं है। आहाहा! इसी प्रकार जो मोक्ष का मार्ग है, वह मार्ग एक ही है। आहा!

मोक्ष का कारण कहा है.. देखा? **(ऐसा सिद्ध होता है); क्योंकि जो जीव परमार्थभूत ज्ञान से रहित है..** आहाहा! परमार्थभूत (अर्थात्) परमपदार्थ प्रभु भगवान का ज्ञान और उसकी श्रद्धा। परमपदार्थ प्रभु आत्मा का ज्ञान, श्रद्धा से रहित है। आहाहा! **परमार्थभूत ज्ञान से रहित है..** त्रिकाली नहीं, वह तो इसका-त्रिकाली का ज्ञान और श्रद्धा, उनसे रहित है। आहाहा! **उसके, अज्ञानपूर्वक किये गये..** आहाहा! यह तो कलश-टीका में नहीं कहा? उस 'यावत्' कर्मधारा और ज्ञानधारा। सम्यक्त्वी के व्रत-तपादि होते हैं, वे भी बन्ध के कारण हैं। कोई अज्ञानी ऐसा कहे (माने) कि मिथ्यादृष्टि के व्रतादि बन्ध के कारण हैं और सम्यक्त्वी के नहीं। ऐसा टीका में है। कलश-टीका... कलश-टीका! यह कलश थोड़े समय बाद आयेगा। आहाहा!

भगवान पूर्ण अनन्त गुण का (सागर) हाजरा-हुजूर विराजमान है न! आहा! हमारे यहाँ लिखते थे। कुँवरजीभाई और वे सब हैदरशाही को माननेवाले न! (इसलिए) बहियों में लिखते, हैदरशाही हाजरा हुजूर। फकीर है। पालीताणा है न! नीचे, नहीं? वहाँ उतरे थे। उस ओर भैरवनाथ का मन्दिर है और इस ओर आगे जाने पर (दूसरा है) दोनों देखे हैं। वहाँ तो आहार किया था। हैदरशाही में! (संवत्) १९६९ में हरगोविन्द का विवाह था, (तब) गये थे। मैंने कहा, भाई! मैं रात्रि में नहीं खाता। तुम बारात को विलम्ब करोगे और सामैया करोगे और देर लगेगी तो मैं रात्रि में नहीं खाऊँगा। (संवत्) १९६९ की बात है। दीक्षा लिए पहले, हों! हैदरशाही का मकान है। ऐसे जाने पर भैरवनाथ है न। वहाँ आवास किया था। फिर वहाँ से लड्डू और गाठिया थे। वे खा लिये, पानी पी लिया। रात्रिभोजन (छोड़ दिया)। मैं रात्रि में नहीं खाऊँगा। आहाहा! यह हाजरा-हुजूर लिखे,...

वह हाजरा-हुजूर नहीं परन्तु तीन लोक का नाथ परमात्मा हाजरा-हुजूर है। वह भगवान तो हाजरा-हुजूर है परन्तु यह भगवान हाजरा-हुजूर है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! सच्चिदानन्द प्रभु, अनन्त-अनन्त अतीन्द्रिय गुण का सागर प्रभु, आहाहा! वह हाजरा-हुजूर प्रभु है। तेरी नजर में तू लेता नहीं, इसलिए तुझे नहीं दिखता। आहा! आहाहा! तेरी

नजरें राग और पर्याय पर होने से प्रभु हाजरा-हुजूर नित्यानन्द, सहजानन्द है, वह है, वह इसे दिखता नहीं। आहाहा!

जो जीव परमार्थभूत ज्ञान से रहित है.. जिसे आत्मज्ञान नहीं, आत्मज्ञान नहीं, आत्मदर्शन नहीं, (ऐसे जीव) आहाहा! **उसके, अज्ञानपूर्वक किये गये व्रत, तप आदि कर्म..** देखो! कर्म अर्थात् यहाँ जड़कर्म नहीं लिया। व्रत और तप, दो शब्द लिये हैं। पश्चात् आगे दूसरे बढ़ा देंगे। व्रत, नियम, शील, तप बाद में लेंगे। बाद की १५३वीं गाथा में नियम और शील (ये) दो अधिक डालेंगे। यहाँ दो डाले। **व्रत, तप आदि कर्म...** अर्थात् राग के कार्य। आहाहा! **बन्ध के कारण हैं, इसलिए उन कर्मों को 'बाल' संज्ञा देकर..** आहाहा! सर्वज्ञ परमेश्वर ने उन्हें 'बाल' ऐसी संज्ञा देकर.. आहाहा। **उनका निषेध किया जाने से..** उनका निषेध किया है। आहाहा! आगम में कहा है न! यह सर्वज्ञ शब्द का (अर्थ किया)। **'सव्वण्हू'** कहा, (उसका अर्थ) सर्वज्ञ, ऐसा। आहाहा! अभी सर्वज्ञ नहीं न! (भले) सर्वज्ञ नहीं, (परन्तु) सर्वज्ञ की वाणी है न! यहाँ भले सर्वज्ञ नहीं, परन्तु अन्यत्र सर्वज्ञ प्रभु हैं और यहाँ सर्वज्ञ नहीं हैं, इसलिए 'आगम' शब्द लिया है, सर्वज्ञ की वाणी ली है। सर्वज्ञ की वाणी है या नहीं? आहाहा!

उन कर्मों को.. अर्थात् कार्यों को। आत्मा के ज्ञानरहित के व्रत, तप और यह वर्षीतप और.. आहाहा! शरीर से आजीवन ब्रह्मचर्य (पालन करे), उन सबको **'बाल' संज्ञा देकर उनका निषेध किया जाने से ज्ञान ही मोक्ष का कारण सिद्ध होता है।** आहाहा! ऐसी स्पष्ट बात है तो भी गड़बड़ करते हैं।

भावार्थ : आत्मा के **ज्ञान के बिना किये गये...** आत्मज्ञान बिना किये गये तप और व्रत को **सर्वज्ञदेव ने बालतप तथा बालव्रत (अज्ञानतप तथा अज्ञानव्रत) कहा है,..** आहाहा! **इसलिए मोक्ष का कारण ज्ञान ही है।** आत्मा है। वह ज्ञानस्वरूपी प्रभु.. आहा! प्रवचनसार में आता है न! त्रिकाली ज्ञान। त्रिकाली ज्ञान को कारणरूप से ग्रहण करके। वह कारणरूप ग्रहण किया, तब यहाँ ज्ञान हुआ। आहाहा! त्रिकाली ज्ञान को जहाँ ग्रहण करता है, वहाँ ही पर्याय में ज्ञान और सम्यग्दर्शन हुआ। उसे मोक्ष का कारण कहा, दूसरे को मोक्ष का कारण कहा नहीं। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)